

आज की नारी

Aaj Ki Nari

आधुनिक काल में नारी-सामाजिक व्यवस्था में स्थान रखती है। पुरुषों की भाँति ही वह उच्च शिक्षा ग्रहण करती है, सभी प्रकार की टेबनिंग लेती है और घर की सीमाओं से बाहर निकलकर स्कूल, क्रीड़ा जगत, पुलिस, सेना आदि कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं जहाँ नारी का प्रवेश न होता है। शिक्षा प्राप्ति और नौकरी से और कोई लाभ हुआ हो या न हुआ हो, एक लाभ यह अवश्य हुआ है कि वह पुरुष की निरंकुशता से मुक्ति प्राप्त करती हैं। आर्थिक स्वावलंबन ने उसके आत्मविश्वास में वृद्धि की है और वह किसी भी समस्या से जूझने को तत्पर है। जिन लोगों को स्त्री की कार्यक्षमता में अविश्वास था, वे भी अब उसकी योग्यता के कायर होने लगे हैं। यही कारण है। कि नौकरी-पेशा पुरुष और स्त्रियों के वेतनमानों में कहीं कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। बल्कि कुछ व्यवसायों में तो स्त्रियाँ जितनी कुशलता से कार्य कर सकती हैं, उतनी कुशलता से पुरुष उस काम को नहीं कर पाते। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज नारी की स्थिति गत शताब्दी की नारियों की अपेक्षा उन्नत हुई है।

आधुनिक नारी बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए सैकड़ों-हजारों व्यय करने के लिए तैयार है परंतु नौकरी के सहारे बड़े हो रहे बच्चे के लिए उसके पास समय का अभाव है। क्लबों-पार्टियों और होटलों की संस्कृति का विकास तेजी से हो रहा है। माता-पिता के उचित संरक्षण का अभाव आगामी पीढ़ी को कुठाग्रस्त बना देता है। प्रदर्शन की इस प्रवृत्ति ने नारी को सहज मानवीय गुणों से वंचित कर दिया है, व्यक्तित्व का विकास अथवा आर्थिक समस्या जैसी चीज उसके जीवन में नहीं है। इस सिक्के का एक पहलू और भी है भारत में अधिकांश नौकरी-पेशा महिलाएँ वे हैं जो पारिवारिक समस्याओं के सामाधान के लिए घर के बाहर निकलती हैं। महानगरीय सभ्यता की आपाधापी में जीवन-स्तर उन्नत करने, बच्चों की शिक्षा और उनके उन्नत भविष्य की चिंता उन्हें घर से बाहर निकलने के लिए विवश कर देती है। इस प्रकार की स्त्रियों को एक साथ दो मोर्चों का सामना करना पड़ता है। सदियों से चली आ रही यह परम्परा कि घर की सम्पूर्ण व्यवस्था करना स्त्री का काम है-उसके मस्तिष्क पर एक बोझ बनाये रखती है। जिस कार्य के लिए वह वेतन लेती है, उस कार्य को अन्य सहकर्मियों के समान कुशलतापूर्वक करना भी उसका दायित्व है, अतः

दोहरी चक्की में पिसना उसकी नियति बन गई है। कार्य पर जाने से पूर्व वह घर के आवश्यक कार्य करती है, दिन भर नौकरी और वापिस आने पर फिर वही पारिवारिक समस्याएँ। जीवन उसके लिए जैसे एक मशीन बनकर रह जाता है। इस स्थिति के लिए हमारी सामाजिक मान्यतायें ही उत्तरदायी हैं। पुरुष प्रधान समाज होने में आधिपत्य प्रायः पुरुष का ही होता है। वह स्त्री से यह अपेक्षा करता है कि घर का प्रबंध भी सुचारु रूप से होता रहे, पत्नी की नौकरी से धन भी आता रहे तथा उसे और बच्चों को कोई कष्ट भी न उठाना पड़े। हम लोग ऊपर से चाहे कितने आधुनिक बनें, हमारे संस्कार और मस्तिष्क की संरचना में कहीं कोई बदलाव नहीं आ पाया है। सभी प्रकार से शिक्षित और सभ्य दिखाई देने वाला समाज अभी भी नारी की शारीरिक, आर्थिक विवशताओं और उसकी अतिशय भावुकता का लाभ उठाये बिना नहीं चूकता।